6440

तित्थयर

मार्च १९९३
षोडश वर्ष : एकादश अंक

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १६ : अंक ११

मार्च १९९३

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००००७

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

जैन धर्म की प्राचीनता ३२३

त्रिषष्टि शलाका पुरुष

चरित्र ३३७

संकलन ३५०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ–कहाँ/क्या ३५१

तित्थयर

संवादपत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) विधि (१९५६) के ८ नम्बर धारा के अनुसार विवृति :

प्रकाशन स्थान :	कलकत्ता
प्रकाशन अवधि :	मासिक
मुद्रक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
प्रकाशक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सम्पादक का नाम :	गणेश ललवानी
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सत्वाधिकारी का नाम :	जैन भवन
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७

मैं, गणेश ललवानी, घोषणा करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे ज्ञान एवं विश्वासानुसार सत्य है ।

गणेश ललवानी

१५-३-९३ प्रकाशक का हस्ताक्षर

जैन धर्म की प्राचीनता

स्व० मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम'

वैदिक वाङ्मय में

प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत जैन परम्परा में श्लाघ्यपुरुष व मानवीय संस्कृति के आदि सूत्रधार के रूप में तो माने ही गये हैं; वैदिक परम्परा में भी स्वयं ब्रह्मा ने ऋषभदेव के रूप में आठवां अवतार ग्रहण किया था। ऋषभ-पुत्र भरत वहाँ भी अपने सौ भाइयों में ज्येष्ठ, शासन-सूत्र के संचालन में परम निपुण तथा निवृत्तिपरायण माने गये हैं। दोनों ही परम्पराओं में दोनों ही श्लाघ्यपुरुषों के जीवन की अधिकांश सदृशता गवेषकों के लिए बहुत कुछ नवीन तथ्यों की उद्भावक है। प्रस्तुत प्रकरण में वेद व पुराणों के आधार पर उनका जीवन तथा उस परम्परा में उनके प्रति अभिव्यक्त अनिर्वचनीयता का संक्षिप्त समुल्लेख किया जा रहा है।

वेदों में अर्हत्[1] तथा अर्हन्त[2] शब्द का प्रयोग-बाहुल्य उस परम्परा की जैन धर्म के प्रति विशेष भावना तो व्यक्त करता ही है; साथ ही ऋषभदेव,

---

१ अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति॥
—ऋग्वेद, मं० २ अ० ४ सू० ३३ वर्ग १०

२ क—इमंस्तोममर्हते जातवेदसेरथमिव संमहेमामनीषया।
भद्राहिनः प्रमतिरस्यसंसद्यग्ने सख्ये मारिषामावयं तव॥
—ऋग्वेद, मं० १ अ० १५ सू० ९४

ख—अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामि शवसः।
प्रयज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चामरुद्भ्यः॥
—ऋग्वेद, मं० ५ अ० ४ सू० ५२

ग—तावृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा।
अर्हन्ताचित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते॥
—ऋग्वेद, मं० ५ अ० ६ सू० ८६

घ—ईडितो अग्ने मनसानो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य।
स आवह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरोबर्हिषदंयजध्वं॥
—ऋग्वेद, मं० २ अ० ११ सू० ३

सुपार्श्वनाथ[३] अरिष्टनेमि[४], महावीर[५] आदि की स्तुति की गई है तथा उन्हें अनिर्वचनीय पुरुष मानकर उनके उपदेशों पर चलने की प्रेरणा भी दी गई है।

ऋग्वेद व अथर्ववेद में ऐसे अनेक मन्त्र हैं, जिनमें ऋषभदेव की स्तुति अहिंसक, आत्म-साधकों में प्रथम, अवधूत चर्या के प्रणेता तथा मर्त्यों में सर्व-प्रथम अमरत्व अथवा महादेवत्व पाने वाले महापुरुष के रूप में की गई है। एक स्थान पर उन्हें ज्ञान का आगार तथा दुःखों व शत्रुओं का विध्वंसक बताते हुए कहा गया है :

असूतपूर्वा वृषभो ज्यायनिभा अस्य शुरुधः सन्तिपूर्वीः।
दिवो न पाता विदथस्यधीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवोदधाथे॥

—ऋग्वेद, ५-३८

जिस प्रकार जल से भरा हुआ मेघ वर्षा का मुख्य स्रोत है और जो पृथ्वी

---

३ ॐ सुपार्श्वमिन्द्र हवे —यजुर्वेद

४ क—ॐ रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा —यजुर्वेद, अ० २६

ख—तर्क्ष्यं वयमाहुवेमस्तो मेरश्विना सविताय नव्यं।
अरिष्टनेमिं परिद्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानम्॥

—ऋग्वेद, अ० २ अ० ४ व २४

ग—वाजस्यनु प्रसव आवभूवेमा, च विश्वा भुवनानि सर्वतः।
स नेमिराजा परियाति विद्वान्, प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मै स्वाहा॥

—यजुर्वेद, अ० ६ मंत्र २५

घ—स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति न स्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः, स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

—सामवेद, प्रपा० ६ अ० ३

५ क—आतिथ्यरूपम्मासरम्महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतिस्रो रात्रीं सुरासुता॥

—यजुर्वेद, अ० १६ मं० १४

ख—देववर्हिर्वर्धमानं सुवीरं, स्तीर्णं राये सुभर वेद्यस्याम्।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं, विश्वे देवा आदित्यास्त्रिषासः॥

—ऋग्वेद, मं० २ अ० १ सू० ३

की प्यास को बुझा देता है, उसी प्रकार पूर्वी अर्थात् ज्ञान के प्रतिपादक वृषभ महान् हैं। उनका शासन वरद है। उनके शासन में ऋषि-परम्परा से प्राप्त पूर्व का ज्ञान आत्मा के क्रोधादि शत्रुओं का विध्वंसक हो। दोनों (संसारी और शुद्ध) आत्माएँ अपने ही आत्म-गुणों में चमकती हैं ; अतः वे ही राजा हैं, वे पूर्ण ज्ञान के आगार हैं और आत्म-पतन नहीं होने देते।

ऋग्वेद के एक दूसरे मन्त्र में उपदेश और वाणी की पूजनीयता तथा शक्ति सम्पन्नता के साथ उन्हें मनुष्यों और देवों में पूर्वयावा माना गया है :

मखस्य ते तीवषस्य प्रजूतिमियर्मि वाचमृताय भूषन्।
इन्द्र क्षितीमामास मानुषीणां विशां देवी नामुत पूर्वयावा ॥

—ऋग्वेद, २।३४।२

हे आत्म-द्रष्टा प्रभो ! परम सुख पाने के लिए मैं तेरी शरण में आता हूँ, क्योंकि तेरा उपदेश और वाणी पूज्य और शक्तिशाली है। उनको मैं अव धारण करता हूँ। हे प्रभो ! सभी मनुष्यों और देवों में तुम्हीं पहले पूर्वयावा (पूर्वगत ज्ञान के प्रतिपादक हो)।

कुछ मन्त्रों में उनका नामोल्लेख नहीं हुआ है, पर, उनकी आकृति को विशेष लक्ष्य करते हुए उनकी गरिमा व्यक्त की गई है :

त्रिणी राजना विदथे पुरूणि परिविश्वानिभूषथः सदांसि।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्वते गन्धर्वां अपि वायुकेशान् ॥

—ऋग्वेद, २।३८।६

दोनों ही राजा अपने त्रिरत्न ज्ञान में सभाओं के हित में चमकते हैं। वह सर्वथा निज ज्ञान में जागरूक, व्रतों के पालक हैं एवं वायुकेश गंधर्वों से वेष्टित रहते हैं। वे गन्धर्व (गणधर) उनकी शिक्षाओं को अवधारण करते हैं। हमें उनके दर्शन प्राप्त हों।

ऋषभदेव का प्रमुख सिद्धान्त था कि आत्मा में ही परमात्मत्व का अधिष्ठान है ; उसे प्राप्त करने का उपक्रम करो। इसी सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए वेदों में उनका नामोल्लेख करते हुए कहा गया है :

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीती, महादेवो मर्त्यानाविवेश।

—ऋग्वेद, ४।५८।३

मन, वचन, काय ; तीनों योगों से बद्ध (संयत) वृषभ (ऋषभदेव) ने घोषणा की कि महादेव (परमात्मा) मर्त्यों में आवास करता है।

उन्होंने अपनी साधना व तपस्या से मनुष्य-शरीर में रहते हुए, उसे प्रमाणित भी कर दिखाया था, ऐसा उल्लेख भी वेदों में है।

तन्मर्त्यस्य देवत्वमजानमग्रे।

—ऋग्वेद, ३१।१७

ऋषभ स्वयं आदि पुरुष थे, जिन्होंने सबसे पहले मर्त्यदशा में देवत्व की प्राप्ति की थी।

ऋषभदेव प्रेम के राजा के रूप में विख्यात थे। उन्होंने जिस शासन की व्यवस्था की थी, उसमें मनुष्य व पशु सभी समान थे। पशु भी मारे नहीं जाते थे।

नास्य पशुन् समानान् हिनास्ति।

—अथर्ववेद

सब प्राणियों के प्रति इस मैत्री भावना के कारण ही वे देवत्व के रूप में पूजे जाते थे।

ऋषभं मा समासानां सपत्नानां विषासहितम्।
हन्तारं शत्रुणां कृधि विराजं गोपितं गवाम्॥

—ऋग्वेद, अ० ८ म० ८ सू० २४

मुद्गल ऋषि पर ऋषभदेव की वाणी के विलक्षण प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा गया है :

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीद् अवावचीत् सारथिरस्य केशी।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्तिष्मा निष्पदो मुद्गलानीम्॥

—ऋग्वेद, १०।१०२।६

मुद्गल ऋषि के सारथी (विद्वान् नेता) केशी वृषभ जो शत्रुओं का विनाश करने के लिए नियुक्त थे : उनकी वाणी निकली, जिसके फलस्वरूप जो मुद्गल ऋषि की गौवें (इन्द्रियाँ) जुते हुए दुर्धर रथ (शरीर) के साथ दौड़ रही थीं, वे निश्चल होकर मौद्गलानी (मुद्गल की स्वात्मवृत्ति) की ओर लौट पड़ीं।

इसीलिए उन्हें आह्वान करने की प्रेरणा दी गई है :

अहोमुचं वृषभं यज्ञियानां विराजंतं प्रथममध्वराणाम्।
अपां न पातमश्विना हुवे श्रिय इन्द्रियेण इन्द्रियं दत्तभोजः॥

—अथर्ववेद, कां० १९।४२।४

समस्त पापों से मुक्त, अहिंसक वृत्तियों के प्रथम राजा, आदित्यस्वरूप श्री ऋषभदेव को मैं आह्वान करता हूँ। वे मुझे बुद्धि और इन्द्रियों के साथ बल प्रदान करें।

ऋग्वेद में उन्हें स्तुति-योग्य बताते हुए कहा गया है :

अनिर्वाणं ऋषभं मन्द्रजिह्वं, बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्के

—मं० १ सूत्र १९० मंत्र १

मिष्टभाषी, ज्ञानी, स्तुति-योग्य ऋषभ को पूजा-साधक मन्त्रों द्वारा वर्धित करो। वे स्तोता को नहीं छोड़ते।

प्राग्नये वाचमीरय

—ऋग्वेद, मं० १० सू० १८७

तेजस्वी ऋषभ के लिए स्तुति प्रेरित करो।

यजुर्वेद, अ० ३१ मन्त्र ८ की एक स्तुति में कहा गया है :

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य पंथा विद्यतेऽयनाय ॥

मैंने उस महापुरुष को जाना है, जो सूर्य के समान तेजस्वी, अज्ञानादि अन्धकार से दूर है। उसी को जानकर मृत्यु से पार हुआ जा सकता है, मुक्ति के लिए अन्य कोई मार्ग नहीं है।

यह स्तुति और जैनाचार्य मानतुंग द्वारा की गई भगवान् ऋषभदेव की स्तुति शब्द-साम्य की दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य है। भक्तामर स्तोत्र में वे कहते हैं :

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुंमान्स।
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं।
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पंथा।

हे ऋषभदेव भगवन् ! तुम्हें मुनिजन परम पुरुष मानते हैं। तुम सूर्य के समान तेजस्वी, मल-रहित और अज्ञान आदि अन्धकार से दूर हो। तुम्हें भली-भाँति जान लेने पर ही मृत्यु पर विजय पाई जा सकती है। हे मुनीन्द्र ! मुक्ति प्राप्त करने का और कोई सरल मार्ग नहीं है।

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों के शब्द और भाव देखने से सहज ही यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों स्तुतियाँ एक ही व्यक्ति को लक्षित करके की गई हैं।

वेदों में ऋषभदेव, सुपार्श्व, अरिष्टनेमि, महावीर आदि तीर्थंकरों का उल्लेख किया गया है। इसकी पुष्टि राष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन्[६], डा० अलब्रेक्ट एफ. वेबर[७], प्रो० विरुपाक्ष वाडियर[८], डा० विमलाचरण लाहा[९], प्रभृति विद्वज्जन भी करते हैं।

प्रो० विरूपाक्ष वाडियर वेदों में जैन तीर्थंकरों के उल्लेखों का कारण उपस्थित करते हुए लिखते हैं : "प्रकृतिवादी मरीचि ऋषभदेव का पारिवारिक था। वेद उसके तत्त्वानुसार होने के कारण ही ऋग्वेद आदि ग्रन्थों की ख्याति उसी के ज्ञान द्वारा हुई है। फलतः मरीचि ऋषि के स्तोत्र वेद-पुराण आदि ग्रन्थों में है और स्थान-स्थान पर जैन तीर्थंकरों का उल्लेख पाया जाता है। कोई ऐसा कारण नहीं कि हम वैदिक काल में जैन धर्म का अस्तित्व न मानें।"[१०]

मनुस्मृति और पुराणों में

अरसठ तीर्थों में यात्रा करने से जो फल होता है, मनुस्मृति ने उतना फल आदिनाथ के स्मरण का माना है :

अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत्।
श्री आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत्॥

मार्कण्डेय पुराण[११], कूर्म पुराण[१२], वायु पुराण[१३], अग्नि पुराण[१४],

---

६ Indian Philosophy, Vol. 1, p. 287

७ Indian Antiquary, Vol. 3, p. 901

८ जैनपथ प्रदर्शक [आगरा] भा० ३, अं० ३, पृ० १०६

९ Historical Gleanings, p, 78

१० अजैन विद्वानों की सम्मतियां, पृ० ३१

११ अग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतो द्विजः।
ऋषभात् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद् वरः॥
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः।
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः॥
—मार्कण्डेय पुराण, अ० ५०

१२ हिमाह्वयं तु यद्वर्ष नाभेरासीन्महात्मनः।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्या महाद्युतिः॥

ब्रह्माण्ड पुराण[15], वाराह पुराण[16], लिंग पुराण[17], विष्णु पुराण[18], स्कन्ध पुराण[19], आदि में ऋषभदेव की स्तुति के साथ-ही-साथ उनके माता-पिता, पुत्र आदि के नाम तथा उनकी जीवन-घटनाएँ भी सविस्तार वर्णित की गई हैं।

श्रीमद् भागवत पुराण

श्रीमद्भागवत पुराण में उनके सुविस्तृत जीवन-प्रसंग प्रस्तुत करते हुए ज्ञान की सात भूमिकाओं में से पदार्थभावना और असंसक्ति की भूमिकाओं के रूप में ऋषभदेव और भरत का जीवन-दर्शन विश्लेषित किया गया है।

ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रः शताग्रजः।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं भरत पृथिवीपतिः॥

—कूर्म पुराण, अ० ४१

13 नाभिस्त्वजनयत्पुत्रं मेरुदेव्या महाद्युतिः।
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम्॥
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोऽभिषिच्याथ भरतं पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः॥

—वायु पुराण, पूर्वार्ध अ० ३३

14 जरामृत्युभयं नास्ति धर्माधर्मौ युगादिकम्।
नाधर्मं मध्यमं तुल्या हिमादेशात्तु नाभितः॥
ऋषभो मरुदेव्यां च ऋषभाद् भरतोऽभवत्।
ऋषभोदात्त श्रीपुत्रे शाल्यग्रामे हरिं गतः॥

—अग्नि पुराण, अ० १०

15 नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मरुदेव्या महाद्युतिम।
ऋषभं पार्थिवं श्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजनम्॥
ऋषभाद भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः॥
हिमाह्वयंदक्षिणं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः।

— ब्रह्माण्ड पुराण, पूर्वार्ध, अनुषङ्गपाद, अ० १४

16 नाभिर्मरुदेव्यां पुत्रमजनयत् ऋषभसामनं तस्य भरतः पुत्रश्च।

—वाराह पुराण, अ० ७४

माता-पिता के नाम, सौ पुत्रों का उल्लेख, साधना के प्रकार, ऋषभदेव का पुत्रों को उपदेश, सामाजिक व धार्मिक नीतियों का प्रवर्तन व भरत की अनासक्ति आदि का वर्णन सविस्तार किया गया है।

श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध, अध्याय ३ में अवतारों का वर्णन करते हुए बताया गया है—"राजा नाभि की पत्नी मेरुदेवा के गर्भ से ऋषभदेव के रूप में भगवान् ने आठवां अवतार ग्रहण किया। इस रूप में उन्होंने परमहंसों का वह मार्ग दिखाया, जो सभी आश्रमवासियों के लिए वन्दनीय है।"[१७]

द्वितीय स्कन्ध, अध्याय सात में लोकावतारों का वर्णन करते हुए कहा है—"राजा नाभि की पत्नी सुदेवी के गर्भ से भगवान् ने ऋषभदेव के रूप

---

१७ नाभेर्निसर्गं वक्ष्यामि हिमाङ्केऽस्मिन्निबोधत :
नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मरुदेव्यां महामतिः ॥
ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूजितम् ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ॥
सोऽभिषिच्याथ ऋषभो भरतं पुत्रवत्सलः ।
ज्ञानं वैराग्यमाश्रित्य जित्वेन्द्रियमहोरगान् ॥
सर्वात्मनात्मन्यास्थाप्य परमात्मानमीश्वरम् ।
नग्नो जटो निराहारोऽचीरी ध्वांतगतो हि सः ॥
निराशस्त्यक्तसंदेहः शैवमाप परं पदम् ।
हिमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ॥

—लिङ्गपुराण, अ० ४७

१८ न ते स्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टसु सर्वदा ।
हिमाह्वयं तु वै वर्षं नाभेरासीन्महात्मनः ॥
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मरुदेव्यां महाद्युतिः ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः ॥

—विष्णु पुराण, द्वितीयांश, अ० १

१९ नाभे पुत्रश्च ऋषभः ऋषभाद् भरतोऽभवत् ।

—स्कन्ध पुराण, माहेश्वर खण्डके कौमारखण्ड, अ० ३७

२० अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभे र्जात उरूक्रम ।
दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रम नमस्कृतम् ॥

—श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १, अ० ३ श्लोक १३

में जन्म लिया। इस अवतार में समस्त आसक्तियों से रहित रह कर, अपनी इन्द्रियों और मन को अत्यन्त शान्त करने एवं अपने स्वरूप में स्थित होकर समदर्शी के रूप में उन्होंने मूढ़ पुरुषों के वेष में योग साधना की। इस स्थिति को महर्षिलोग परमहंस-पद अथवा अवधूत-चर्या कहते हैं।"[२१]

श्री मद्भागवत के पंचम स्कन्ध, अध्याय २ से १४ तक ऋषभदेव, भरत तथा बाद में जड़ भरत का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है।

विदेश में

सुप्रसिद्ध पादरी रेवरेण्ड ऐब्बे जे० ए० डुबाई ने अपनी फ्रांसीसी भाषा की पुस्तक में लिखा है "एक युग में जैन धर्म सारे एशिया में साइबेरिया से कन्याकुमारी तक और केस्पियन झील से लेकर केम्सचटका खाड़ी तक फैला था।" रेवरेण्ड डुबाई के इस मत की पुष्टि में प्रमाणों की अल्पता नहीं है। विदेशों में बहुत सारे स्थानों पर खुदाई में तीर्थंकरों की विभिन्न मुद्राओं में मूर्तियां प्राप्त हुई हैं तथा वहाँ की अनुश्रुतियों में प्रसिद्ध नाना घटनाएँ भी इस तथ्य का विशद उद्घाटन करती हैं। भगवान् ऋषभदेव विदेशों में पूज्य रहे हैं तथा वहाँ 'कृषि के देवता', 'वर्षा के देवता' और 'सूर्यदेव' के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। डा० कामताप्रसाद जैन ने उन सब मान्यताओं का विद्वानों की नाना गवेषणाओं के आधार पर वर्गीकरण करते हुए लिखा है—"पूर्व में चीन और जापान भी उनके नाम और काम से परिचित हैं। चीनी त्रिपिटक में उनका उल्लेख मिलता है। जापानी उनको रोकशब Rok'shab कह कर पुकारते हैं। मध्यएशिया, मिश्र और यूनान में वे सूर्यदेव ज्ञान की अपेक्षा से और फोनेशिया में रेशेफ बैल चिह्न की अपेक्षा से कहलाये। मध्य एशिया में वृषभ (बैल) देव Bull-god अर्थात् 'वाड आल' नाम से उल्लिखित किए गये। फणिक लोगों की भाषा में 'रेशेफ' शब्द का अर्थ 'सींगों वाला देवता' होता है, जो ऋषभ के बैल चिह्न का द्योतक है—साथ ही रेशेफ शब्द का साम्य भी ऋषभ शब्द से है।" प्रो० आर० जी० हर्षेल ने "बुलेटिन आव दी डेक्कन कालेज रिसर्च इन्स्टीच्यूट" (भा० १४, खण्ड ३, पृ० २२६-२३६) में एक गवेषणात्मक लेख निकालकर

---

२१ नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनु, यों वैचचार समदृग् जडयोगचर्याम्।
यत् पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति, स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः॥
—श्रीमद्भागवत, स्कन्ध २, अ० ७, श्लोक १०

इस साम्य को स्पष्ट किया है। उन्होंने बताया कि आलसिफ (साइप्रास) से प्राप्त अपोलो (सूर्य) की ई० पूर्व १२वीं शती की मूर्ति का अपर नाम रेशेफ Reshef उसके लेख से स्पष्ट होता है। यह रेशेफ ऋषभ का ही अपभ्रंश रूप है और यह ऋषभ भारतीय नरेश नाभि पुत्र होना चाहिये। यूनान में सूर्यदेव अपोलो की ऐसी नंगी मूर्तियां मिली हैं, जिनका साम्य ऋषभ भगवान् की मूर्तियों से है। डा० कालिदास नाग ने मध्य एशिया में डेल्फी से प्राप्त एक आर्गिव मूर्ति का चित्र अपनी पुस्तक "डिस्कवरी आव एशिया" में दिया है, जो लगभग दस हजार वर्ष पुराना है और बिल्कुल भगवान् ऋषभ की दिगम्बर जैन मूर्तियों के समान है। ऋषभ मूर्ति की विशेषता कन्धों पर लहराती जटाएँ इसमें भी हैं। 'अर्गिव' शब्द का अर्थ कदाचित् अग्रमानव या अग्रदेव के रूप में लिया जा रहा प्रतीत होता है।

फणिक लोग जैन धर्म भक्त भी थे, यह बात जैन कथा-ग्रन्थों से प्रमाणित है। अतः फणिकों के 'बाऽल' Bull-god ऋषभ प्रतीत होते हैं। यह नाम प्रतीकवाद (symbolic) शैली का है।[२१]

इतिहास के सन्दर्भ में

जैन धर्म अनादि है। प्रत्येक काल-चक्रार्ध के उत्सर्पणी और अवसर्पणी में चौबीस तीर्थंकर होते हैं, जो कालक्रम से अपवर्तन के चक्र में फँसे हुये धर्म को उद्वर्तन देते हैं। उद्वर्तन और अपवर्तन की नाना प्रक्रियाओं को कुछ अनुसन्धाता ऐतिह्य तथ्यों के आधार पर परखने के अनन्तर जब कुछ तथ्य प्रकट करते हैं, तब वह केवल श्रद्धा-गम्य ही नहीं रह जाता, अपितु तर्क-गम्य भी हो जाता है। चौबीस तीर्थंकर श्रद्धा-गम्य तो हैं ही, तेबीसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ और चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर की ऐतिहासिकता में अब सन्देह नहीं रह गया है तथा बाईसवें तीर्थंकर भगवान् अरिष्टनेमि भी विद्वानों द्वारा ऐतिहासिक पुरुष माने जा चुके हैं। प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के समय तक इतिहास अभी नहीं पहुँच पाया है, फिर भी जहाँ तक वह पहुँचा है, भगवान् ऋषभदेव के बारे में भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

मोहन-जो-दड़ो की खुदाई से प्राप्त होनेवाली मुहरों में कुछ पर एक ओर नग्न ध्यानस्थ योगी की आकृति है और दूसरी ओर वृषभ का चिह्न है।

---

२१ भिक्षु स्मृतिग्रन्थ, अध्याय २, पृ० ४

वृषभ भगवान् ऋषभदेव का लांछन था ; अतः यह अनुमान सहज ही हो जाता है कि उस समय में भी उनकी पूजनीयता प्रसिद्ध थी।

दो हजार वर्ष पूर्व राजा कनिष्क तथा हुविष्क आदि के शासन में हुई खुदाई में प्राप्त शिलालेख मथुरा के संग्रहालय की आज भी शोभा बढ़ा रहे हैं। डा० फुहरर ने उन शिलालेखों से प्राचीन इतिवृत्त का अनुसन्धान कर यह निर्णय दिया था कि प्राचीन समय में जैनी ऋषभदेव की मूर्तियाँ बनाते थे।

श्री विसेण्ट ए० स्मिथ का कहना है : "मथुरा से प्राप्त सामग्री लिखित जैन परम्परा के समर्थन में विस्तृत प्रकाश डालती है और जैन धर्म की प्राचीनता के विषय में अकाट्य प्रमाण उपस्थित करती है तथा यह बतलाती है कि प्राचीन समय में भी वह अपने इसी रूप में मौजूद था। ईस्वी सन् के प्रारम्भ में भी वह अपने विशेष चिह्नों के साथ चौबीस तीर्थंकरों की मान्यता में दृढ़ विश्वासी था।"[२३]

जर्मन के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० हर्मन जेकोबी[२४] जिन्होंने तीर्थंकरों की ऐतिहासिकता पर महत्वपूर्ण अनुसन्धान किया था, अपनी गवेषणा के अनन्तर कहते हैं : "पार्श्वनाथ को जैन धर्म का प्रणेता या संस्थापक सिद्ध करने के

---

२३ The discoveries have to a very large extent supplied corroboration to the written Jain tradition and they offer tangible incontrovertible proof of the antiquity of the Jain religion and of its early existence very much in its present form The series of twentyfour pontiffs (Tirthankaras, each with his distinctive emblem, was evidently firmly believed in at the beginning of the Christian era.

—The Jain Stup —Mathura, Intro., p. 6

२४ There is nothing to prove that Parsva was the founder of Jainism. Jain tradition is unanimous in making Rishabha the first Tirthankara as its founder. There may be something historical in the tradition which makes him the first Tirthankara.

—Indian Antiquary, vol. ix p. 163

लिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। जैन परम्परा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को जैन धर्म का संस्थापक मानने में एक मत है। इस मान्यता में ऐतिहासिक सत्य की सम्भावना है।"

श्री स्टीवेन्सन की गवेषणा डा० हर्मन जेकोबी के अभिमत की पुष्टि करती है। वे लिखते हैं : "जब जैन और ब्राह्मण ; दोनों ही ऋषभदेव को इस कल्प-काल में जैन धर्म का संस्थापक मानते हैं तो इस मान्यता को अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता।"[२५]

बरदाकान्त मुखोपाध्याय एम० ए० ने विभिन्न ग्रन्थों तथा शिलालेखों का अध्ययन करने के अनन्तर आत्म-विश्वास के साथ यह अभिमत प्रकट किया था : "लोगों का यह भ्रमपूर्ण विश्वास है कि पार्श्वनाथ जैन-धर्म के संस्थापक थे, किन्तु, इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेव ने किया था। इसकी पुष्टि में प्रमाणों का अभाव नहीं है।"[२६]

कुछ विद्वानों व गवेषकों ने तीर्थंकरों के बारे में तो अपना अभिमत प्रकट नहीं किया है, पर, वे अपने अनुसन्धान के आधार पर जैन धर्म को सृष्टि का आदि धर्म, प्रागैतिहासिक धर्म, अतिप्राचीन धर्म तथा स्वतन्त्र धर्म प्रमाणित करते है।

सन् १८१७ में इस्ट इण्डिया कम्पनी ने सुप्रसिद्ध पादरी रेवरेण्ड एब्बे जे० ए० डुबाई द्वारा फ्रांसीसी भाषा में लिखित पुस्तक का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद प्रकाशित किया था। उसमें जैन धर्म के बारे में अपना अभिमत, व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं : "निस्सन्देह जैन धर्म ही सारे संसार में एक सच्चा धर्म है और यही समस्त मनुष्यों का आदि धर्म है।"[२७]

---

२५ It is so seldom that Jains and Brahmanas agree ; that I do not see how we can refuse them credit in this instance where they do so.

— Kalpa sutra, Intro, p. xvi

२६ जैन धर्म की प्राचीनता, पृ० ८

२७ Yea, his (Jain) religion is the only true one upon earth, the primitive faith of all mankind.—Description of the Character, Manners and Customs of the People of India and of their Institutions—Religious and Civil.

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक जैन धर्म को अनादि मानते हुए लिखते हैं : "ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि जैन धर्म अनादि है। यह विषय निर्विवाद तथा मतभेद से रहित है। इस विषय में इतिहास के सबल प्रमाण हैं···जैन धर्म प्राचीनता में पहले नम्बर है। प्रचलित धर्मों में जो प्राचीन धर्म हैं, उनमें भी यह प्राचीन है।"[२८]

संस्कृत कालेज वाराणसी के प्राध्यापक महामहोपाध्याय पंडित राममिश्र शास्त्री ने जैनधर्म की प्राचीनता को सप्रमाण स्वीकार करते हुये कहा है : "जैन धर्म तब से प्रचलित हुआ, जब से सृष्टि का आरम्भ हुआ। इसमें मुझे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है कि जैन दर्शन वेदान्तादि दर्शनों से पूर्व का है।"

सुप्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० मैक्समूलर जैन धर्म को किसी भी धर्म की शाखा मानने को तैयार नहीं है। वे लिखते हैं : "विशेषतः प्राचीन भारत में किसी भी धर्मान्तर से कुछ ग्रहण करके एक नूतन धर्म प्रचार करने की प्रथा ही नहीं थी। जैन धर्म हिन्दू धर्म से सर्वथा स्वतन्त्र है। वह उसकी शाखा या रूपान्तर नहीं है।"

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् मेजर जनरल जे० सी० आर० फलांग एफ० आर० एस० ई० ने जैन धर्म के बारे में जो अपना अभिमत व्यक्त किया है, वह पूर्व विचारों को अच्छी तरह से पुष्टि कर देता है। उनकी सुदृढ़ मान्यता थी कि ईसा से अनगिनत वर्ष पूर्व भारत में जैन धर्म फैला हुआ था। आर्य लोग जब भारत में आये, तब यहाँ जैन धर्म के अनुयायी अवस्थित थे। बौद्ध धर्म ने प्राचीन ईसाई धर्म को कैसे प्रभावित किया, इस प्रश्न को समाहित करते हुए वे लिखते हैं : "बौद्ध धर्म ने प्राचीन ईसाई धर्म को कौन से ऐतिहासिक साधनों से प्रभावित किया, इसकी गवेषणा करते हुए यह निस्सन्देह स्वीकार करना होगा कि इस धर्म ने जैन धर्म को स्वीकार किया था, जो वास्तव में अरबों-खरबों वर्षों से करोड़ों मनुष्यों का प्राचीन धर्म था।"[२९]

---

२८ अहिंसा-वाणी, वर्ष ६ अंक ४, जुलाई ५६, पृ० १९७-१९८

२९ Through what historical channels did Buddhism influenced early Christianity? We must widen this enquiry by making it embrace Jainism, undoubtedly prior faith for very many millions of years.

—The Short Study in Science of Comparative Religion.

(Intro. p. 1.)

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा.

"जैन धर्म के आरम्भ को जान पाना असम्भव है।"[३०]

"भारतवर्ष का सबसे प्राचीन धर्म जैन धर्म ही है।"[३१]

१६ सितम्बर १९५६ को जापान के शिमिज़ू नगर में विश्व धर्म परिषद् की आयोजना की गई। बर्मा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश मा० यूचान तुन आँग ने अध्यक्ष पद से भाषण करते हुए वहाँ कहा था : "जैन धर्म संसार के ज्ञात सभी प्राचीन धर्मों में से एक है और उसका घर भारत है।"[३२]

डा० जिम्मर जैन धर्म को प्राग्ऐतिहासिक व वैदिक धर्म से स्वतन्त्र तथा प्राचीन मानते हुए लिखते हैं : "ब्राह्मण-आर्यों से जैन धर्म की उत्पत्ति नहीं हुई है, अपितु वह बहुत प्राचीन, प्राग्-आर्य उत्तर-पूर्वी भारत की उच्च श्रेणी के सृष्टि-विज्ञान और मनुष्य के आदि विकास तथा रीति-रिवाजों के अध्ययन को व्यक्त करता है।"[३३]

जैन धर्म की प्रागैतिहासिकता, अतिप्राचीनता तथा अनादिता में विश्वास होने से भगवान् ऋषभदेव के अस्तित्व में भी सहज आस्था हो जाती है।

---

३० It is impossible to find a beginning for Jainism.
(Ibid, p. 14)

३१ Jainism thus appears an earliest faith of India.
(Ibid, p. 15)

३२ अहिंसा-वाणी, वर्ष ६ अंक ७, अक्टूबर १९५६, पृ० ३०५

३३ Jainism does not derive from Brahmana Aryan sources, but reflects the cosmology and anthropology of a much old, pre-Aryan upper class of North-Eastern India.
—The Philosophies of India, p. 217.

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

सप्तम सर्ग

सीता का पूर्ण संवाद प्राप्त कर राम-लक्ष्मण ने आकाश पथ से सुग्रीव सहित लंका के लिए प्रयाण किया। भामण्डल, नल, नील, महेन्द्र, हनुमान, विराध, सुषेण, जाम्बवान्, अंगद और अन्य अनेक विद्याधर राजा अपनी सेना से दिक्समूह को आवृत करते हुए राम के साथ चले। विद्याधरगण अनेक प्रकार के रणवाद्य बजाने लगे। उसके गम्भीर नाद से आकाश मंडल गूँज उठा। अपने स्वामी का कार्य सिद्ध करने के लिए गर्वित खेचरगण ने विमान में, रथ में, अश्व पर, हस्ती पर एवं अन्य वाहनों पर बैठ-बैठ कर आकाश पथ से गमन किया।

समुद्र के ऊपर से जाते हुए वे लोग अल्प समय में ही वेलंधरपुर नगर के निकट पहुँचे। यह नगर वेलंधर पर्वत के ऊपर ही अवस्थित था। इस नगर में समुद्र से दुर्द्धर समुद्र और सेतु नामक दो राजा थे। उन्हें उद्धत देखकर राम की जो सेना अग्रवर्ती थी उनके साथ युद्ध करने लगी। स्व-स्वामी के कार्य में चतुर नल और नील ने समुद्र एवं सेतु को पकड़ कर राम के सन्मुख उपस्थित किया। दयालु रामने उनका राज्य उन्हें लौटा दिया। महान पुरुष पराजित शत्रु पर भी दया करते हैं। राजा समुद्र ने अपनी तीन कन्याओं का विवाह लक्ष्मण के साथ कर दिया। वे देखने में सुन्दर और स्त्रियों में रत्नरूपा थीं। उस दिन राम सैन्य सहित वहीं अवस्थित रहे। दूसरे दिन सुबह समुद्र और सेतु को लेकर वे वहाँ से रवाना होकर सुवेल गिरि के निकट पहुँचे। वहाँ के राजा सुवेल को पराजित कर उस दिन वहीं रहे। तदुपरान्त वहाँ से रवाना होकर तृतीय दिन हंस द्वीप पहुँचे। वहाँ से लंका निकट ही थी। वहाँ के राजा हंस को भी पराजित कर राम उस दिन वहीं रहे। लंका के अधिवासी राम के आगमन को सुनकर उसी प्रकार भयभीत हो गए जिस प्रकार मीन राशि पर शनि के आगमन से लोक भयभीत हो जाते हैं। उन्हें शंका होने लगी कि प्रलय काल चारों ओर से बढ़ा आ रहा है।

राम के सन्निकट आने का संवाद सुनकर हस्त, प्रहस्त, मरीच, और सारन आदि रावण के हजार-हजार सामन्त युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए। शत्रुओं को प्रताड़ित करने के लिए बुद्धिमान रावण ने सैनिकों द्वारा करोड़ों

महा भयंकर रणवाद्य बजवाए। उसी समय विभीषण ने रावण के निकट जाकर कहा, 'हे अग्रज, क्षण काल के लिए शान्त होकर शुभ फलदायी मेरे कथन पर विचार कीजिए। आपने इहलोक और परलोक दोनों को नष्ट करने वाला कार्य किया है। आपने परायी स्त्री का अपहरण किया है। इस अविवेक जन्य कार्य के कारण हमारा कुल लज्जित हो गया है। अब राम अपनी पत्नी को लेने के लिए यहाँ आ गए हैं। अतः सीता उन्हें सौंपकर उनका अतिथि सत्कार कीजिए, यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो राम अन्य प्रकार से सीता को ले जाएँगे और आपके साथ आपके समस्त कुल को दोषी ठहराएँगे। साहसगति विद्याधर और खर राक्षस का अन्त करने वाले राम और लक्ष्मण की तो बात ही छोड़िए उनका दूत बनकर आनेवाले हनुमान की शक्ति तो आपने देख ही ली है। इन्द्र से भी अधिक आपका वैभव है। यदि आपने सीता का परित्याग नहीं किया तो सीता के साथ-साथ आपका वैभव भी नष्ट हो जाएगा। आप दोनों प्रकार से नष्ट और भ्रष्ट हो जाएँगे।

विभीषण का यह कथन सुनकर इन्द्रजित बोल उठा, 'तात, आप तो जन्म से ही भीरु हैं। आपने समस्त कुल को दूषित किया है। आप मेरे पिता के सहोदर कदापि नहीं हैं। आप मूर्खों की भाँति इन्द्र विजयी समस्त वैभव के अधीश्वर मेरे पिता के लिए जिस प्रकार शंका प्रकट कर रहे हैं उससे लगता है आप सत्य ही मृत्यु के अभिलाषी हो गए हैं। पहले भी आपने मिथ्या बोलकर मेरे पिताजी को ठगा है। आपने दशरथ को मारने की प्रतिज्ञा करके भी उसे मारा नहीं। अब, जब राम यहाँ आ गए हैं तब आप निर्लज्ज होकर उस भृचारी का भय दिखा उसे पिता जी के हाथ से बचाना चाहते हैं। इससे लगता है, आप राम के पक्ष के हैं। राम ने आप को वश में कर लिया है। अब आप विचार सभा में सम्मिलित होने योग्य नहीं हैं। कारण आप मन्त्रियों के साथ जो विचार किया जाता है वही शुभफलदायी होता है।

विभीषण बोले, 'मैं तो शत्रु पक्ष का नहीं हूँ किन्तु लगता है तुमने कुल शत्रु के रूप में जन्म लिया है। जन्मान्ध की भाँति तुम्हारे पिता वैभव और काम में अन्ध हो गए है। अरे ओ मूर्ख, तुम कलके बालक, क्या समझ सकते हो? अग्रज, इस इन्द्रजित पुत्र और आपके आचरण के कारण अल्प दिनों में ही निश्चय रूप से आपका पतन होगा। अब मैं आपके लिए और व्यर्थ चिन्ता नहीं करूँगा।'

विभीषण के ऐसे वचन सुनकर भाग्यहीन रावण को अत्यन्त क्रोध आ

गया। वह भयंकर तलवार निकालकर विभीषण को मारने के लिए अग्रसर हुआ। विभीषण ने भी भृकुटि तानकर अपने मुख को और अधिक भयंकर बना लिया। और हस्ती की तरह एक स्तम्भ को उखाड़ कर रावण के साथ युद्ध के लिए उद्यत हो गया। यह देखकर कुम्भकर्ण और इन्द्रजित ने बीच में पड़कर उन्हें युद्ध से रोका और महावत जिस प्रकार दो मतवाले हाथियों को उनके अपने-अपने स्थानों पर ले जाते हैं उसी प्रकार उन दोनों को उनके अपने-अपने स्थानों पर ले गए। जाते-जाते रावण बोला, 'विभीषण, तुम लंका छोड़कर चले जाओ, कारण तुम अग्नि की भाँति अपने आश्रय को विनष्ट करने वाले हो।'

रावण की बात सुनकर विभीषण उसी क्षण लंका का परित्याग कर राम के पास चले गए। उनके पीछे-पीछे अन्यान्य राक्षस और विद्याधरों की ३० अक्षौहिणी सेना भी रावण का परित्याग कर चली गयी। विभीषण को सैन्य सहित आते देखकर सुग्रीव आदि चिन्तित हो गए। कारण डाकिनी की तरह शत्रु पर तत्काल विश्वास नहीं किया जा सकता। विभीषण ने प्रथम एक दूत भेजकर राम को अपने आने की सूचना दी। राम ने अपने विश्वास पात्र सुग्रीव के मुख की ओर देखा।

सुग्रीव बोले, 'हे देव, यद्यपि सभी राक्षस जन्म से ही मायावी और क्षुद्र प्रकृति के होते हैं फिर भी यदि विभीषण यहाँ आना चाहते हैं तो आएँ। हमलोग गुप्त रीति से उनका शुभाशुभ भाव जान लेंगे एवं तदुपरान्त उनके भावानुसार योग्य व्यवस्था करेंगे।'

उसी समय जो कि विभीषण को अच्छी तरह जानता था वह विशाल नामक खेचर बोला, 'हे प्रभु, इन राक्षसों में विभीषण ही एक मात्र धर्मात्मा और महात्मा है! इन्होंने ही रावण से सीता को छोड़ देने के लिए कहा था। रावण ने कुपित होकर इन्हें बहिष्कृत कर दिया। इसीलिए ये आपकी शरण में आए हैं। इसमें जरा भी मिथ्या नहीं है।'

यह सुनकर राम ने उन्हें अपने शिविर में आने की आज्ञा दी। विभीषण ने आकर राम के चरणों में अपना मस्तक रखा। राम ने उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया। विभीषण बोले, 'हे प्रभु, मैं अपने अन्यायी अग्रज का परित्याग कर आपकी शरण में आया हूँ, अतः मुझे भी सुग्रीव की तरह अपना आज्ञाकारी भक्त समझ कर सेवा की आज्ञा दीजिए!'

राम ने उसी समय उन्हें आश्वासन देते हुए कहा, 'मैं लंका का राज्य आपको दूँगा।' महात्मा को किया हुआ प्रणाम कभी व्यर्थ नहीं जाता।

हंस द्वीप में आठ दिन अवस्थान कर राम कल्पान्त काल की भाँति सैन्य सहित लंका की ओर प्रस्थान कर गए। लंका (बाह्य) के प्राकार के बाहर २० योजन भूमि को स्व-सेना द्वारा आवृत कर एवं व्यूह रचना कर राम युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए। राम की सेना के कोलाहल ने समुद्र ध्वनि की तरह समस्त लंका को बधिर कर डाला। वह ध्वनि ऐसी थी कि लगता था ब्रह्माण्ड खंड-खंड हो जाएगा।

रावण के असाधारण बलधारी प्रहस्तादि सेनापति और योद्धागण कवच पहन कर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गए। कोई हाथीकी पीठ पर बैठकर, कोई अश्व पर चढ़कर, कोई सिंह पर, कोई गधे पर, कोई रथारूढ़ होकर, कोई कुबेर की तरह मनुष्य की पीठ पर चढ़कर, कोई अग्नि की तरह भेड़ पर चढ़कर, कोई यम की भाँति भैंसे पर चढ़कर, कोई रेवन्तकुमार की तरह अश्वारूढ होकर, कोई देवता की तरह विमान में बैठकर, ऐसे एक-एक कर अनेक युद्धकुशल वीर रावण के निकट एकत्रित हो गए।

बज्रश्रवा का ज्येष्ठ पुत्र रावण भी क्रोध से लाल आँख किए युद्ध के लिए सज्जित होकर विविध आयुधों से पूर्ण रथ पर जाकर बैठ गया। द्वितीय यमसा कुम्भकर्ण हाथ में त्रिशूल लेकर रावण के पास पार्श्वरक्षक बनकर खड़ा हो गया। इन्द्रजित और मेघकुमार भी रावण के दोनों ओर खड़े हो गए—वे ऐसे लग रहे थे मानों वे रावण की दोनों भुजाएँ हों। उसके अन्य पराक्रमी पुत्र, कोटि-कोटि सामन्त और शुक, सारण, मारीच मय और सुंद आदि भी वहाँ उपस्थित हो गए। रण कौशल में चतुर ऐसी असंख्य सहस्र अक्षौहिणी सेना से दिशाओं को आवृत करता हुआ रावण लंका से बाहर निकला।

रावण की सेना में कोई सिंह ध्वजा युक्त था, कोई अष्टापद ध्वजा से युक्त था तो कोई चमरू ध्वजा से युक्त, कोई हस्ती, कोई मयूर, कोई सर्प, कोई मार्जार तो कोई कुकुर ध्वजा युक्त था। किसी के हाथ में धनुष था, किसी के हाथ में खड्ग, किसी के हाथ में भुषुण्डी, किसी के हाथ में मुद्गर, किसी के हाथ में त्रिशूल, किसी के हाथ में परिघ, किसी के कुठार तो किसी के हाथ में पाश था। वे प्रतिपक्षियों को बारबार आह्वान कर रणस्थल में चतुरता के साथ विचरण कर रहे थे।

रावण की विशाल सेना वैताढ्य गिरि-सी लग रही थी। उसकी सेना ५० योजन भूमि को आवृत कर अवस्थित हो गयी।

उभय पक्ष के सैनिक अपने-अपने नायकों की प्रशंसा कर विपक्ष के नायकों की निन्दा करने लगे और दूसरे को आक्षेप देते हुए गाल बजाकर ताल ठोक

कर शस्त्रों को झंकृत कर करताल की तरह एक दूसरे से सन्नद्ध हो गए। 'ठहर-ठहर, भाग क्यों रहा है ; अस्त्र धारण कर, भीरू की तरह खड़ा मत रह, यदि भला चाह रहा है तो अस्त्र रखकर शरण ले'—इस प्रकार कहते हुए चित्कार करने लगे। तीर, शंकु, वर्शा, चक्र, गदा और परिघ अरण्य में उड़ने वाले पक्षियों की तरह उड़ने लगे और दोनों ओर की सेना में आ-आकर गिरने लगे। एक दूसरे के प्रहार से उभय पक्ष के योद्धा आहत होने लगे। उनके शिर कटकर उछलने लगे, वे उड़ते हुए सिर और धड़ ऐसे लगने लगे मानो समस्त आकाश राहु और केतुमय हो गया है। मुद्गर के आघात से हाथियों को धराशायी करने वाले वीर ऐसे लग रहे थे मानो यष्टि से तंदुक खेल रहे हों। कोई दोनों हाथ दोनों पैर और मस्तक कट जाने से ऐसे लग रहे थे मानों फल-फूल पत्र शाखा-प्रशाखा-हीन वृक्ष खड़ा है। वीर योद्धागण शत्रु का मस्तक काट-काटकर जमीन पर गिराने लगे मानो वे क्षुधातुर यमराज को आहार दे रहे हैं।

बहुत देर तक युद्ध चला। पैतृक सम्पत्ति का अंश पाने में जैसे देर लगती है उसी प्रकार जयलक्ष्मी सधने में विलम्ब होने लगी। दीर्घकाल तक युद्ध करने के पश्चात् बानर सेना ने हवा जैसे वन को भग्न कर देती है उसी प्रकार राक्षस सेना को भग्न कर डाला। राक्षस सेना को परास्त होकर पीछे हटते देखकर रावण की जय के जमानत रूप हस्त और प्रहस्त युद्ध के लिए अग्रसर हुए। उनसे युद्ध करने के लिए इस पक्ष के वीर योद्धा नल और नील उनके सम्मुख गए।

पहले वक्र और अवक्र ग्रहों की तरह रथारूढ़ होकर वे परस्पर मिले। एक-दूसरे को युद्ध के लिए आह्वान करने लगे। दोनों पक्षों से बाण-वर्षा होने लगी। परस्पर की इस बाण वर्षा में चार व्यक्तियों के रथ विद्ध हो गए। क्षणमात्र में लगता नल विजयी हो रहा है किन्तु दूसरे ही क्षण लगता हस्त विजयी हो रहा है। इस प्रकार हर क्षण परिवर्तित होनेवाली जय-पराजय को देखकर निपुण व्यक्ति भी उनकी शक्ति का परिमाप करने में असमर्थ हो गए। अन्त में अपने पक्ष के योद्धाओं को मुख ताकते देखकर नल लज्जित हुए और साथ ही क्रोध से उद्दीप्त होकर तत्काल अव्याकुल रूप में क्षुरप्र तीर द्वारा हस्त का मस्तक काट डाला। ठीक उसी समय नील ने भी प्रहस्त को मार डाला। देवों ने हर्षित होकर आकाश से नल और नील पर पुष्प वृष्टि की।

हस्त और प्रहस्त की मृत्यु से रावण पक्षीय वीर क्रुद्ध हो उठे। उनमें मारीच, सिंहजघन, स्वयम्भू, सारण, शुक, चन्द्र, अर्क, उद्दाम, बीभत्स, कामाक्ष,

मकर, ज्वर, गंभीर, सिंहरथ और अश्वरथ आदि योद्धा युद्ध के लिए आगे आये। मदनकुमार, सन्ताप, प्रथित, आक्रोश, नन्दन, दुरित, अनघ, पुष्पास्त्र, विघ्न और प्रीतिकर आदि वानर वीर उनके एक-एक व्यक्ति के साथ युद्ध करने लगे। कभी ऊपर उछलकर कभी जमीन पर गिरकर मुर्गे जिस प्रकार लड़ाई करते हैं उसी प्रकार वे युद्ध करने लगे। इस भाँति बहुत देर तक युद्ध होता रहा। मारीच राक्षस सन्ताप बन्दर पर, नन्दन बन्दर ज्वर राक्षस पर, उद्दाम राक्षस विघ्न बन्दर पर, दूरित बन्दर शुक्र राक्षस पर और सिंहजघन राक्षस प्रथित बन्दर पर प्रहार कर आहत करने लगे उसी समय सूर्य अस्त हो गया। अतः राम और रावण की सेना ने युद्ध रोक दिया। और अपने-अपने पक्ष के मृत और आहतों को खोजने लगे।

रात व्यतीत हुयी। सूर्य उदय हुआ। तब दानव सेना देव सेना के साथ जिस प्रकार युद्ध करने जाती है उसी प्रकार राक्षस योद्धा राम के योद्धाओं के साथ युद्ध करने लगे। राक्षस सेना के मध्य भाग में हाथी के हौदे पर बैठकर रावण स्व-सेना को संचालित करने आया। वह मेरु-सा प्रतीत हो रहा था। क्रोध के कारण उसके नेत्रों से अग्नि स्फुलिंग-से निकल रहे थे। ऐसा लग रहा था मानो वह दिक समूहों को भस्म कर देना चाह रहा हो। विविध अस्त्रों से सज्जित रावण यमराज से भी अधिक भयंकर लग रहा था। इन्द्र की भाँति अपने प्रत्येक सेनापति पर दृष्टि रखकर और शत्रु को तृण समान समझता हुआ रावण युद्धभूमि में आया। उसे देखते ही राम के पराक्रमी सेनापतिगण जिन्हें देव आकाश से देख रहे थे सेना सहित युद्ध के लिए अग्रसर हुए।

युद्ध आरम्भ हुआ। अल्प समय में ही युद्ध स्थल प्रवाहित रक्त के कारण कहीं नदी-सा, जमीन पर गिरे हुए हाथियों के कारण पर्वत-सा, रथ से टूट पड़ी मकरमुख ध्वजाओं से मकर के निवास स्थान-सा, अर्द्धभग्न बड़े-बड़े रथ से कहीं समुद्र से निकलते दाँतों-सा, नृत्यरत कवन्धों से नृत्यभूमि-सा लग रहा था।

रावण की हुँकार पर राक्षसगण प्रबल वेग से बन्दरों पर आक्रमण कर उन्हें पीछे लौटने को बाध्य करने लगे। अपनी सेना को पीछे हटते देखकर सुग्रीव क्रोधित हो गए। वे धनुष लेकर प्रबल सेना के साथ पृथ्वी को कम्पित करते हुए आगे बढ़े। उनको जाते देख हनुमान उनको रोककर स्वयं युद्ध के लिए आगे आया। अगणित सैनिकों से रक्षित दुर्मद राक्षस व्यूह अत्यन्त

दुर्भेद्य था। फिर भी हनुमान ने जिस प्रकार मन्दराचल समुद्र में प्रवेश करता है उसी प्रकार उस व्यूह में प्रवेश किया।

हनुमान को सेना के मध्य प्रवेश करते देखकर तीर-धनुष लेकर दुर्जय माली नामक राक्षस मेघ की तरह गर्जन करता हुआ उनपर आक्रमण करने लगा। दोनों में युद्ध प्रारम्भ हुआ। धनुष पर टंकार करते हुए दोनों वीर ऐसे लग रहे थे मानों दो सिंह अपनी पूँछ को जमीन पर पछाड़ रहे हों। एक-दूसरे पर वे प्रहार कर रहे थे। शस्त्र द्वारा अंग छिन्न कर रहे थे। और खूब गर्जना कर रहे थे। बहुत देर तक युद्ध करने के पश्चात हनुमान ने माली को उसी प्रकार अस्त्रविहीन कर डाला जिस प्रकार ग्रीष्म कालीन सूर्य क्षुद्र सरोवर को शुष्क—जलविहीन कर देता है। तब हनुमान माली से बोले, 'हे वृद्ध राक्षस, तू यहाँ से चला जा तुम्हें मारकर क्या लाभ होगा।'

हनुमान का यह कथन सुनकर वज्रोदर राक्षस सम्मुख आया। बोला, 'रे पापी, दुर्वचनी, इधर आ। अब तेरी मृत्यु आ गयी है, मुझ से युद्ध कर, मैं तुझे यम लोक पहुँचा दूँ।'

वज्रोदर की बात सुनकर हनुमान केशरी सिंह की तरह गरजे और बाण-वृष्टि कर उसे आच्छादित कर डाला। उन बाणों को छिन्न कर मेघ जैसे सूर्य को आच्छादित कर देता है उसी प्रकार वज्रोदर ने अपने बाणों से हनुमान को आवृत कर दिया। आकाश से सौम्य और निरपेक्ष देवगण जो कि युद्ध देख रहे थे बोल उठे, 'अहो, वज्रोदर वीर हनुमान के साथ युद्ध करने में समर्थ और उनके योग्य है।' मान के पर्वत रूप हनुमान इस देवोक्ति को सहन न करने के कारण क्रुद्ध होकर उत्पात मेघ की तरह विचित्र शस्त्र वृष्टि कर समस्त राक्षस वीरों के सामने बज्रोदर को मार डाला।

बज्रोदर की मृत्यु से क्रुद्ध होकर रावण का पुत्र जम्बूमाली सम्मुख आया और महावत जैसे हाथी का आह्वान करता है उसी प्रकार तिरस्कार पूर्वक हनुमान को युद्ध के लिए आह्वान किया। एक दूसरे का वध करने के लिए वे परस्पर साँप और सपेरे की तरह बाण युद्ध करने लगे। वे एक दूसरे पर आए हुए बाणों से द्विगुणित बाण बरसाने लगे। उस समय उनकी स्थिति क्रमशः ऋणदाता और ऋण ग्रहण करने वाले जैसी हो गयी। हनुमान ने कुपित होकर जम्बूमाली को रथ अश्व और सारथी विहीन कर डाला। फिर उसपर मुद्गर से कठोर प्रहार किया। फलतः जम्बूमाली मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

जम्बूमाली को मूर्च्छित होते देखकर महोदर नामक राक्षस क्रोध से बाण

वृष्टि करता हुआ युद्ध के लिए हनुमान के सन्मुख आया। अन्य राक्षसों ने भी हनुमान को मारने के लिए श्वान जैसे सूअर को घेर लेता है उसी भाँति उन्हें चारों ओर से घेर लिया। हनुमान के तीव्र बाण शीघ्रता पूर्वक निर्गत होकर शत्रुओं को आहत करने लगे। कोई बाण हाथ में कोई मुख में कोई पैर में कोई हृदय में कोई उदर में प्रविष्ट हो गया। इस समय हनुमान राक्षसों की सेना में इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे वन में दावानल एवं समुद्र में वड़वानल। अल्प समय में ही हनुमान ने राक्षस सेना को इस प्रकार नष्ट कर डाला जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट कर देता है।

राक्षस सेना को इस प्रकार नष्ट होते देखकर कुम्भकर्ण क्रुद्ध होकर युद्ध के लिए आया। वह इस प्रकार सुशोभित हो रहा था मानों ईशानेन्द्र ही पृथ्वी पर उतर आया हो। पद प्रहार से, मुष्टि प्रहार से, कोहनी के प्रहार से, थप्पड़ मारकर, मुद्गर के आघात से, टक्कर के आघात से इस प्रकार अनेक प्रकार से वे बानर सेना को नष्ट करने लगे।

कल्पान्त काल के समुद्र की भाँति रावण के तपस्वी भाई कुम्भकर्ण को युद्ध में उपस्थित देखकर सुग्रीव, भामण्डल, दधिमुख, महेन्द्र, कुमुद, अंगद और अन्यान्य वीर बानर अग्नि की भाँति क्रोध से प्रज्वलित होकर युद्ध भूमि में उपस्थित हुए। वे श्रेष्ठ बन्दरगण विचित्र प्रकार के शस्त्रों की वर्षा करते हुए शिकारी जिस प्रकार सिंह को घेर लेता है उसी प्रकार कुम्भकर्ण को घेर लिया।

तब कुम्भकर्ण ने कालरात्रि-सा मुनि वाक्य की तरह अमोघ प्रस्वापन नामक अस्त्र इन पर निक्षेप किया। फलस्वरूप समस्त बानर सेना जिस प्रकार कुमुद दिन में सो जाता है उसी प्रकार निद्रा के वशीभूत हो गए। यह देखकर विभीषण ने तत्काल प्रबोधिनी नामक महाविद्या को स्मरण किया। उसके प्रभाव से समस्त बानर सेना जाग उठी और 'कुम्भकर्ण कहाँ है? मारो मारो' आदि शब्द उच्चारित करने लगी। उनका कोलाहल वैसा ही लग रहा था जैसे पक्षीगण प्रभात होने पर करते हैं।

सुग्रीव अधिष्ठित योद्धागण ने कानों तक खींच-खींच कर बाण बरसा कर कुम्भकर्ण को अस्त-व्यस्त कर दिया। सुग्रीव ने गदा के प्रहार से कुम्भकर्ण के सारथी और अश्वों की हत्या कर रथ को भग्न कर डाला। कुम्भकर्ण हाथ में गदा लेकर नीचे उतर आया। उसे देखकर ऐसा लग रहा था मानों शिखर युक्त पहाड़ खड़ा हो, कुम्भकर्ण सुग्रीव की ओर दौड़ा।

कुम्भकर्ण के गतिवेग से जो वायु प्रवाहित हुयी उससे हाथी के स्पर्श से जैसे वृक्ष गिर जाता है उसी प्रकार कितने ही जमीन पर गिर पड़े। नदी जिस प्रकार पाषाण की बाधा हटाकर निर्बाध तेजी से बहती रहती है, उसी प्रकार बानरों की बाधा हटाकर कुम्भकर्ण दौड़ा और सुग्रीव के रथ को चूर्ण कर डाला। सुग्रीव आक्रोश में उड़कर वहीं से इन्द्र जिस प्रकार पर्वत पर वज्र निक्षेप करता है उसी प्रकार कुम्भकर्ण पर एक वृहद शिलाखण्ड फेंका। कुम्भकर्ण ने गदा के प्रहार से उस शिला को चूर-चूर कर दिया। शिला का चूर्ण कुम्भकर्ण के चारों ओर इस भाँति उड़ने लगा जैसे कुम्भकर्ण बानर सेना को ढकने के लिए धूल वृष्टि कर रहा हो। तदुपरान्त बाली के अनुज सुग्रीव ने कुम्भकर्ण पर विद्युतास्त्र निक्षेप किया। उसे विफल करने के लिए कुम्भकर्ण ने भी कितने ही अस्त्र फेंके किन्तु उसका कोई फल नहीं निकला। कल्पान्त काल की तरह वह कुम्भकर्ण पर आकर गिरा और उसे जमीन पर गिराकर मूर्च्छित कर दिया।

अपने भाई कुम्भकर्ण को मूर्छित होते देखकर रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। भृकुटि तानने के कारण वह बड़ा भयंकर लगने लगा। रणभूमि की ओर उसे जाते देखकर लगा जैसे यमराज चलकर आ रहा हो। उसी समय इन्द्रजित आकर उससे बोला, 'पिताजी, आपके सम्मुख तो यम, कुबेर, वरुण और इन्द्र की भी शक्ति नहीं है जो खड़े रह सकें, बेचारे इन बानरों की तो बात ही क्या है! अतः हे देव, आप अभी न जाएँ। मैं जाकर इस बन्दर को जिस प्रकार थप्पड़ से मच्छर को मारा जाता है उसी प्रकार मार डालता हूँ।'

इस प्रकार रावण को निरस्त कर महामानी इन्द्रजित महापराक्रम दिखाता हुआ युद्ध क्षेत्र की ओर बढ़ा। उस पराक्रमी वीर के युद्ध क्षेत्र में आते ही बानर सेना उसी प्रकार रणस्थल का परित्याग कर भागने लगी जिस प्रकार साँप के आने पर मेंढक सरोवर को छोड़ जाते हैं। बानरों को भागते देखकर इन्द्रजित बोला, 'बानरों, खड़े रहो, व्यर्थ में डरो मत। जो युद्ध नहीं करता मैं उसकी हत्या कदापि नहीं करता। मैं रावण का पुत्र हूँ। हनुमान और सुग्रीव कहाँ है! उन्हें भी जाने दो, शत्रुता करनेवाले राम-लक्ष्मण कहाँ है!

इस प्रकार गर्व से भरा क्रोध से लाल नेत्र किए इन्द्रजित ने युद्ध के लिए सुग्रीव का आह्वान किया, जिस प्रकार अष्टापद-अष्टापद में युद्ध होता है उसी प्रकार भामण्डल भी इन्द्रजित के भाई मेघवाहन के साथ युद्ध करने लगा। त्रिलोक के लिए भयंकर परस्पर प्रहारकारी वे ऐसे लग रहे थे मानो

चारों दिग्गज या चार समुद्र हों। उनके रथों की तीव्र गति से पृथ्वी काँपने लगी, पर्वत हिलने लगे, और महासागर क्षुब्ध हो उठा। अति हस्त-लाघवता से और अनाकुलता से वे कब धनुष पर बाण रखते और छोड़ देते वह जाना ही नहीं जाता था। वे लौहमय शस्त्रों से और देवाधिष्ठित अस्त्रों से बहुत देर तक युद्ध करते रहे किन्तु कोई भी किसी को पराजित नहीं कर सका।

अन्ततः भयंकर क्रोधावेश में आकर इन्द्रजित और मेघवाहन ने सुग्रीव और भामण्डल पर नाग-पाश अस्त्र निक्षेप कर दिया उससे वे लोग इस प्रकार बंध गए कि श्वास लेना भी उनके लिए कठिन हो गया। उसी समय कुम्भकर्ण की चेतना लौटी। उसने हनुमान पर गदा से प्रहार किया हनुमान मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तब कुम्भकर्ण ने तक्षक नाग सी अपनी भुजाओं द्वारा हनुमान को उठाकर बगल में दबाया और लंका की ओर चल पड़े। यह देखकर विभीषण ने राम से कहा—'हे प्रभु, शरीर में जैसे दो नेत्र होते हैं उसी प्रकार सुग्रीव और भामण्डल आपकी सेना का सार है। उन्हें इन्द्रजित और मेघवाहन ने नागपाश में बाँध रखा है। उन्हें लेकर वे लंका जाएँगे उसके पूर्व ही मुझे आज्ञा दें मैं उन्हें बन्धन मुक्त कर ले आऊँ। हे प्रभु, सुग्रीव, भामण्डल, एवं हनुमान के बिना हमारी सेना वीरविहीन है।'

विभीषण जिस समय राम से यह कह रहे थे उसी समय अंगद कुम्भकर्ण पर झपटे और युद्ध करने लगे। क्रोधान्ध कुम्भकर्ण ने ज्योंही अपनी भुजाएँ उठायीं हनुमान उसकी बगल से निकलकर जिस प्रकार पींजरे का दरवाजा खुला पाते ही पक्षी उड़ जाता है तत्काल आकाश में उड़ गए। इन्द्रजित और मेघवाहन के साथ युद्ध कर सुग्रीव और भामण्डल को मुक्त कराने के लिए विभीषण रथ पर चढ़कर उनकी ओर बढ़ा। विभीषण को आते देखकर इन्द्रजित सोचने लगा पिता का छोटा भाई होते हुए भी विभीषण मुझसे युद्ध करने आ रहे हैं। चाहे कुछ भी हो आखिर ये मेरे पितृव्य हैं। उनसे युद्ध करना मेरे लिए उचित नहीं है। कारण ये मेरे पितृतुल्य हैं। अतः मेरा यहाँ से चले जाना ही उचित है। अपने बड़े और पूज्यों के सम्मुख से पीछे हटना लज्जास्पद नहीं है। नागपाश में बद्ध शत्रु अवश्य ही मर जाएँगे। अतः उन्हें यहीं पटक कर चला जाऊँ ताकि वे मेरे निकट नहीं आएँ और नहीं मुझे उनसे युद्ध करना पड़े। ऐसा सोचकर मेघवाहन के साथ इन्द्रजित वहाँ से चला गया। विभीषण भामण्डल और सुग्रीव के पास जाकर खड़े हो गए, राम और लक्ष्मण भी चिन्ता से म्लान मुख बने हिमाच्छादित सूर्य और चन्द्र की तरह वहाँ पहुँचे।

उसी समय राम ने सुपर्ण निकाय के देव महालोचन को स्मरण किया जिन्होंने राम को पहले वरदान दिया था। वह देव अवधि ज्ञान से समस्त वृतान्त को जानकर वहाँ आया और राम को सिंहनिनादा नामक विद्या, मूसल, रथ और हल दिया साथ ही लक्ष्मण को गारूड़ी विद्या, रथ और युद्ध में शत्रु को विनाश करने वाली विदयुद्वदना नामक गदा दी। इसके अतिरिक्त उसने आग्नेय, वायव्य आदि दिव्य अस्त्र और छत्र भी दिए। देव के चले जाने के पश्चात् लक्ष्मण सुग्रीव और भामण्डल के पास गए। उनके वाहन गरूड़ को देखते ही सुग्रीव और भामण्डल से लिपटे नागपाश के नागगण उसी समय भाग छूटे। दोनों वीर मुक्त हो गए। राम की सेना में चारों ओर जय-जयकार होने लगी। राक्षस सेना में सूर्यास्त के साथ-साथ हताशा का अन्धकार छा गया।

तीसरे दिन सुबह राम और बानर सेना पूर्ण बलपूर्वक युद्ध क्षेत्र में अवतरित हुयी। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। निक्षिप्त अस्त्र ऐसे लग रहे थे मानों कृतान्त दाँत चबाते हुए जा रहा हैं। उस प्राण संहार की लीला को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे असमय में ही प्रलयकाल के संवर्त मेघ ने वृष्टि आरम्भ कर दी है। मध्याह्न काल के ताप से तप्त बराह जिस प्रकार सरसी—जलाशय के जल को मथ डालता है उसी प्रकार राक्षस सेना ने बानर सेना को मथ डाला।

अपनी सेना को भग्न प्राय देखकर सुग्रीवादि बानर वीरों ने योगी जिस प्रकार परकाया में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राक्षस सेना में प्रवेश किया। उससे आक्रान्त होकर गरुड़ के दर्शन से सर्प, जल में कच्चा घड़ा पराभूत हो जाता है (गल जाता है) उसी प्रकार राक्षस सेना भी पराभूत हो गयी।

राक्षस सेना को पराभूत होते देखकर क्रुद्ध रावण स्वयं युद्ध के लिए अग्रसर हुआ। उसके सुदीर्घकाय रथ के पहिए इस प्रकार घूमने लगे मानों वे पृथ्वी का वक्ष फाड़ देना चाहते हो। दावानल जैसे विध्वंसकारी रावण के सामने कोई भी बानर वीर खड़ा नहीं रह सका। यह देखकर राम स्वयं युद्ध में जाने के लिए प्रस्तुत हुए, किन्तु विभीषण उन्हें रोककर स्वयं युद्ध स्थल में पहुंचे। उन्हें देखकर रावण बोल उठा, 'अरे विभीषण, तूने किसका आश्रय लिया है, क्रोध से भरे मुझे युद्ध स्थल में आते देखकर मेरे मुख के प्रथम ग्रास के रूप में मरने के लिए तुझे भेज दिया। शिकार के समय शिकारी जिस प्रकार बराह के सम्मुख कुत्ता को भेज देता है उसी प्रकार अपने जीवन की रक्षा के इच्छुक राम ने तुझे मेरे सामने भेज कर बुद्धिमानी का ही कार्य किया

है। हे वत्स, अभी भी तुझ पर मेरा स्नेह है अतः तू शीघ्र यहाँ से चला जा। आज मैं राम और लक्ष्मण सहित समस्त वानर सेना को विनष्ट करूँगा। एतदर्थ तू मरनेवालों की संख्या में अपना नाम युक्त मत कर। तू सानन्द अपने स्थान को लौट जा। आज भी तेरी पीठ पर मेरा वरद हस्त है।'

रावण के ये वचन सुनकर विभीषण बोले, 'हे अग्रज, तुम नहीं जानते राम क्रुद्ध होकर यमराज की भाँति तुम पर आक्रमण करने आ रहे थे। मैंने ही उन्हें बहाना बनाकर रोका है। तुम्हारे साथ युद्ध करने के बहाने मैं तुम्हें समझाने आया हूँ। तुम अब भी मेरी बात मानकर सीता को छोड़ दो। हे अग्रज, मैं राम के पास न मृत्यु के भय से आया हूँ, न राज्य के लोभ से, मैंने तो केवल अपवाद के भय से उनकी शरण ली है। अतः सीता को छोड़ कर—अपवाद और कलंक को छोड़ दो तो मैं भी राम का परित्याग कर तुम्हारे पास लौट आऊँगा।'

विभीषण की यह बात सुनकर रावण कुपित होकर बोला, 'हे दुर्बुद्धि, हे कायर, तू क्या अब भी मुझे भय दिखा रहा है? मैंने तो मात्र भ्रातृ-हत्या के भय से ऐसा कहा था, दूसरा कोई कारण नहीं था'—कहते हुए रावण ने धनुष पर टंकार की। 'मैं भी भातृ हत्या के भय से ही तुम्हें ऐसा कह रहा था, दूसरा कोई कारण नहीं था'—कहते हुए विभीषण ने भी धनुष पर टंकार की। तदुपरान्त नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों को निक्षेप कर दोनों भाई उद्धता पूर्वक युद्ध करने लगे।

इसी समय कुम्भकर्ण इन्द्रजित एवं अन्य राक्षस भी यमराज के दूतों की तरह स्वामी भक्ति से प्रेरित होकर वहाँ उपस्थित हो गए। उन्हें आते देखकर राम लक्ष्मण आदि भी युद्ध के लिए अग्रसर हुए। कुम्भकर्ण और राम, लक्ष्मण और इन्द्रजित, सिंहजघन और नील, घटोदर और दुर्मुख, दुर्मति और स्वयंभू शम्भु और नल, मय और अंगद, चन्द्रनख और स्कन्द, विघ्न और चन्द्रोदर पुत्र, केतु और भामण्डल, जम्बुमाली और श्रीदत्त, कुम्भ और हनुमान, सुमाली और सुग्रीव, धूम्राक्ष और कुन्द और सागर एवं चन्द्ररश्मि आदि अन्यान्य राक्षस अन्यान्य वानरों के साथ समुद्र में जिस प्रकार एक मकर अन्य मकर के साथ युद्ध करता है उसी प्रकार युद्ध करने लगे।

भयंकर युद्ध होने लगा। इन्द्रजित ने क्रुद्ध होकर लक्ष्मण पर तामस अस्त्र फेंका। शत्रु को ताप देने वाले लक्ष्मण ने पवनास्त्र से अग्नि जिस प्रकार मोम को गला देती है उसी प्रकार उसे गलाकर निष्फल कर दिया। लक्ष्मण ने इन्द्रजित पर नागपाश अस्त्र चलाया। जल में उतरा हाथी जिस प्रकर रस्सी

से बाँधा जाता है उसी प्रकार इन्द्रजित नागपाश से बंध गया। नागपाश से बंधकर इन्द्रजित जमीन पर गिर पड़ा मानो पृथ्वी को चीर डालना चाहता हो। लक्ष्मण की आज्ञा से बिराध ने उसे उठाकर रथ में डाल दिया और बन्दी की तरह उसे अपने शिविर में ले गया। राम ने भी कुम्भकर्ण को नागपाश में बाँध दिया। राम की आज्ञा से भामण्डल उसे उठाकर अपनी छावनी में ले गया। मेघ वाहन आदि वीरों को बाँध-बाँध कर राम के योद्धा अपने-अपने शिविर में ले गए।

युद्ध की यह स्थिति देखकर रावण शोक से व्याकुल हो उठा। उसने क्रोधावेश में जयलक्ष्मी के मूल-सा त्रिशुल विभीषण पर फेंका। उस त्रिशूल को लक्ष्मण ने अपने वाणों से मध्य में ही कदली खण्ड की तरह नष्ट कर डाला। तब विजयार्थी रावण धरणेन्द्र की दी हुयी अमोघ विजया नामक शक्ति को आकाश में घुमाने लगा घग-घग तड़-तड़ करती हुयी वह शक्ति प्रलय काल में चमकनेवाली विद्युत की भाँति दिख रही थी। उसे देखकर देवगण आकाश से हट गए। सैनिकों ने आँखें बन्द कर लीं। कोई भी स्वस्थ रूप में वहाँ खड़ा नहीं रह सका।

उस अमोघ शक्ति को देखकर राम लक्ष्मण से बोले, 'हमारा शरणागत विभीषण यदि इस शक्ति से निहत हो गया तो यह ठीक नहीं होगा। लोग हमें आश्रित घातक कहकर धिक्कारेंगे।' राम की बात सुनकर लक्ष्मण विभीषण के सम्मुख जाकर खड़े हो गए। गरूड़ पर चढ़े लक्ष्मण को आगे आते देखकर रावण बोला, 'हे लक्ष्मण, मैंने यह शक्ति तुझे मारने के लिए प्रस्तुत नहीं की है। अतः अन्य की मृत्यु के मध्य आकर स्वयं मत मर—अथवा तू स्वयं मर जा। कारण तुझे तो मैं मारूँगा ही। तेरा आश्रित यह विभीषण, बेचारा भिखारी की भाँति मेरे सम्मुख खड़ा है।'

तत्पश्चात उसने उत्पात वज्रतुल्य उस शक्ति से लक्ष्मण पर प्रहार किया। उस शक्ति को लक्ष्मण की ओर आते देखकर सुग्रीव, हनुमान, भामण्डल आदि वीर अपने विभिन्न प्रकार के अस्त्रों द्वारा उसे रोकना चाहा किन्तु वह शक्ति सबों की अवज्ञा कर निर्विघ्न रूप में जिस प्रकार उन्मत्त हाथी अंकुश से नहीं रुकता उसी भाँति समुद्र के बड़बानल की तरह प्रज्वलित होकर लक्ष्मण के हृदय पर जा लगी। उसके आघात से लक्ष्मण मूर्च्छित होकर गिर पड़े। बानर सेना में चारों ओर हाहाकार मच गया।

[क्रमशः

संकलन

॥ धर्म व्यापार नहीं, आचार बने ॥

आज हमने धर्म को या तो अंधश्रद्धा में बदल दिया या बौद्धिक तर्क जाल में उलझा दिया। इसके साथ जुड़ा विवेकशीलता और जागरूकता का तत्व खो गया। परिणाम यह हुआ कि धर्म जीवनचर्या से कट गया। क्षतिपूर्ति के सिद्धान्त के रूप में धर्म का उपयोग किया जाने लगा। पाप और पुण्य की तराजू पर उसे तोला जाने लगा। वह व्यक्ति अधिक धार्मिक माना जाने लगा जिसके पास धन है, अधिक परिग्रह है और अधिक भोग सामग्री है। धर्म का त्याग से, समर्पण से, विनय से, सादगी से, श्रम से सम्बन्ध छूटता गया। बाहर से परिग्रह भले ही छूट गया हो पर भीतर में परिग्रह का दायरा बढ़ता गया, बाहर से घर भले ही छूट गया हो पर भीतर में बाजार सजता गया। फल यह हुआ कि धर्म का जो अंकुश राजनीति में था, समाज-व्यवस्था में था, आर्थिक प्रबन्धन में था वह ढीला पड़ता गया और धर्म धीरे-धीरे जीवन से कट गया, आचार से अलग हो गया, वह व्यापार बन गया। इसीलिए धर्म से करूणा गायब हो गई, परमार्थ वृत्ति गायब हो गई। आवश्यकता है इसे जीवन और समाज में फिर से प्रतिष्ठित करने की और यह तभी सम्भव है जब धर्म व्यापार नहीं, आचार बने।

—डा. नरेन्द्र भानावत

जिनवाणी, फरवरी १९९३

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

जिनवाणी ॥ फरवरी १९९३

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'प्रार्थना का प्रभाव' (स्व. आ. श्री हस्तीमलजी), 'मानसिक शान्ति के मूल सूत्र' (आ. श्री देवेन्द्र मुनि), 'श्रावक धर्म : स्वरूप और चिन्तन' (श्री रमेश मुनि), 'जैन आगम—एक विवेचन' (दुलीचन्द जैन)।

जैन जगत ॥ फरवरी १९९३

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है श्री वीरचन्द राघवजी गांधी (मदनकुमार मेहता)।

जैन जर्नल ॥ अक्टूबर १९९२

इस अंक में है 'Sacred Literature of the Jains' (A. F. Weber), 'Contribution of Jaina Literature in the Development of Medical Science : Treatment of Leprosy' (Nagendra Kumar Singh), Jain Origin of a Hindu 'Temple' (S. Padmanabhan), Kundakundacarya : His Life and Works' (K. B. Jindal), 'A Note on Sarasvatamandana' (Satyavrat), 'The Ramayana Culture in Karnataka Jainism' (Vasantha Kumari).

तीर्थंकर ॥ फरवरी १९९३

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'ऊर्जा और संयम' (कन्हैयालाल सरावगी), 'श्रम की पोथी में टँकी एक कविता' (सुरेश सरल), 'फर्क : मांसाहार और शाकाहार' (आचार्य राजकुमार जैन)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :

Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330
Vol. XVI No. 11 TITTHAYARA March 1993
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञान मं
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा.